ISSN 2278-8808
An International Peer Reviewed
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

चरक संहिता एवं रोग ज्ञान

डॉ. बीरपाल सिंह

विभागाध्यक्ष (संस्कृत विभाग), राजकीय महाविद्यालय गौण्डा, अलीगढ़

Abstract

आचार्य चरक और आयुर्वेद का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक का स्मरण होने पर दूसरे का अपने आप स्मरण हो जाता है। आचार्य चरक केवल आयुर्वेद के ज्ञाता ही नहीं थे परन्तु सभी शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनका दर्शन एवं विचार सांख्य, दर्शन एवं वैशेषिक दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। आचार्य चरक संहिता निर्माण के साथ–साथ वन–वन, स्थान–स्थान घूम–घूमकर रोगी व्यक्ति की चिकित्सा सेवा किया करते थे तथा इसी कल्याणकारी कार्य तथा विचरण क्रिया के कारण उनका नाम 'चरक' प्रसिद्ध हुआ। चरकसंहिता की रचना दूसरी शताब्दी से भी पूर्व हुई थी। यह आठ भागों में विभक्त है जिन्हें 'स्थान' नाम दिया गया है जैसे, निदानस्थान। प्रत्येक 'स्थान' में कई अध्याय हैं जिनकी कुल संख्या 120 है। इसमें मानव शरीर से सम्बन्धित (तत्कालीन) सिद्धान्त, हेतुविज्ञान, अनेकानेक रोगों के लक्षण तथा चिकित्सा वर्णित है। चरकसहिता में भोजन, स्वच्छता, रोगों से बचने के उपाय, चिकित्सा–शिक्षा, वैद्य, धाय और रोगी के विषय में विशद चर्चा की गयी है। प्रस्तुत विश्लेषण आयुर्वेद का परिचय मात्र ही है । आचार्य चरक द्वारा प्रदत्त आयुर्वेद के ज्ञान को किसी शोध– पत्र या शोध–प्रबन्ध में समाहित कर पाना ऐसा ही है जैसे कि गागर में सागर को समाहित करना।

तकनीकि शब्दावलीः रोग लक्षण, निदान, चिकित्सा, वैद्य, प्रकृति।

विश्लेषण एवं निष्कर्षः शास्त्रकारों ने हमारे इस शरीर को रोग–व्याधियों का एक बड़ा भण्डार घर भी कहा है– बात भी सत्य है क्योंकि मानव शरीर के जन्म के साथ ही रोग और मृत्यु भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पैदा हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारे षरीर के जो उपादान कारण हैं, वे ही विकारी तथा अनित्य हैं। हमारा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाष और वायु इन पाँच भूतों (तत्त्वों) से बना है और माता–पिता के रज–वीर्य से उत्पन्न हुआ है इसलिये उन सब तत्त्वों के गुण–धर्म आदि का शरीर में होना स्वाभाविक है और उनके कार्यों में व्यतिक्रम हो जाने पर शरीर में विकार यानि रोग उत्पन्न होना भी स्वाभाविक है ।

रोग एवं आरोग्य लक्षणः

आचार्य चरक ने संक्षेप में रोग और आरोग्य का लक्षण यह लिखा है– वात, पित्त और कफ, इन तीनों दोषों का सम मात्रा (उचित प्रमाण) में होना ही और इनमें विषमता होना ही है। सुश्रुत ने स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण विस्तार से दिया है– जिससे सभी दोष सम मात्रा में हों, अग्नि सम हो, धातु, मल और उनकी क्रियाएं भी सम (उचित रूप) में हों तथा जिसकी आत्मा, इंद्रिय और मन प्रसन्न (शुद्ध) हों उसे स्वस्थ समझना चाहिए। इसके विपरीत लक्षण हों तो अस्वस्थ समझना चाहिए। रोग को विकृति या विकार भी कहते हैं। अतः शरीर, इंद्रिय और मन के प्राकृतिक (स्वाभाविक) रूप या क्रिया में विकृति होना रोग है।

चरकसंहिता के निदानस्थान के श्लोक–2 में कहा गया है कि इस प्रकरण में हेतु, निमित्त, आयतन, कर्ता, कारण, प्रत्यय, समुत्थान तथा निदान एकार्थवाचक हैं। संसार की सभी वस्तुएँ साक्षात् या परपंरा से शरीर, इंद्रियों और मन पर किसी न किसी प्रकार का निश्चित प्रभाव डालती हैं और अनुचित या प्रतिकूल प्रभाव से इनमें विकार उत्पन्न कर रोगों का कारण होती हैं। इन्हें तीन वर्गों में बाँट दिया गया है–

1. असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग
2. प्रज्ञापराध
3. परिणाम

शरीर पर इन सभी कारणों के तीन प्रकार के प्रभाव होते है–

1. दोष प्रकोप
2. धातु दूषण
3. उभयहेतु

आयुर्वेद में रोगों के अन्य दो प्रकार भी बताये गये हैं–

1. **निज** : जब पर्वोक्त कारणों से क्रमशः शरीरगत वातादि दोष में और उनके द्वारा धातुओं में विकार उत्पन्न होते हैं तो उनको निज हेतु या निज रोग कहते हैं।

2. **आगंतुक** : चोट लगना, आग से जलना, विद्युत्प्रभाव, साँप आदि विषैले जीवों के काटने या विषप्रयोग से जब एकाएक विकार उत्पन्न होते हैं तो उनमें भी वातादि दोषों का विकार होते हुए भी, कारण की भिन्नता और प्रबलता से, वे कारण और उनसे उत्पन्न रोग आगंतुक कहलाते हैं।

आयुर्वेद में चरक ने चरकसत्रू स्थान में रोग परीक्षा के पाँच साधन माने है– आचार्य वाग्भट ने अष्टागं सग्रंह में रोग को जानने के उपाय के बारें में कहा है कि–' निदान, प्रागरूप, रूप–लक्षण, उपशय और आप्ति ये पाँच साधन है। इस प्रकार आयुर्वेदाचार्यो ने रोग की परीक्षा हेतु निदानपंचक का वर्णन किया है। आयुर्वेद के अनुसार, रोग की परीक्षा (रोग का ज्ञान) इन पांच उपायों से होता है। निदानपंचक से रोग के बल का ज्ञान होता है। इसके साथ ही साथ चिकित्सा हेतु रोगी के बल का ज्ञान भी आवश्यक है। जिससे यह निर्णय होता है कि रोगी चिकित्सा सहन करने योग्य है अथवा नहीं। इसके लिए दशविध परीक्षा का वर्णन आया है जिसके अंतर्गत विकृति परीक्षा को छोड़कर शेष परीक्षा रोगी के बल को जानने के लिए है। इन पाचं उपायों को निदानपञ्चक कहते हैं। जो इस प्रकार है–

1. निदान
2. पूर्वरूप
3. रूप (लिङ्ग)
4. उपशय
5. सम्प्राप्ति

आयुर्वेद में नाड़ी परीक्षा अति महत्व का विषय है। केवल नाड़ी परीक्षा से दोषों एवं दूष्यों के साथ रोगों के स्वरूप आदि का ज्ञान अनुभवी वैद्य प्राप्त कर लेता है।

1. द्विविध परीक्षा–प्रत्यक्ष, अनुमान
2. त्रिविध परीक्षा –प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्तोदेष
3. चतुर्विध परीक्षा –प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्तोदेष, युक्ति
4. षड्विध परीक्षा –पंचज्ञानेन्द्रिय एवं प्रष्न परीक्षा
5. अष्टविध परीक्षा –नाड़ी, मल, मूत्र, जिह्वा, शब्द (ध्वनि), स्पर्श, नेत्र और आकृ ति
6. दशविध परीक्षा – प्रकृति, विकृति, सार, सहनन, प्रमाण, सात्म्य, सत्त्व, आहारषक्ति, व्यायाम, षक्ति, वायु
7. द्वादशविध परीक्षा –आयु, व्याधि, अग्नि, वायु, ऋतु, देह, बाल, सत्त्व, सात्म्य, प्रकृति, भेषज, देश्य।

रोग और रोगी की स्थिति या प्रकृति ज्ञात करने के लिए नाड़ी परीक्षा एक महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता हैं। नाड़ी परीक्षा के लिए प्रातकालः का समय

और खाली पेट रहना आवष्यक है। हाथ के अगुंश्ठमूल से नीचे की दायें हाथ की और स्त्रियों के बायें हाथ की गति का अध्ययन किया जाता है। चिकित्सक को निर्देष है कि वह दायें हाथ को प्रयोग करते हुए हाथ की तीन अंगुलियाँ–तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका को नाड़ी परीक्षा के लिए उपयागे में लायें। तर्जनी अगुंली अगूंठे के मूल पर रखकर तीनों से दबाकर समान दबाब के साथ नाड़ी परीक्षा की जाती है। जिस अंगुली की ओर गति अधिक अनुभव होगी उसी रोग की प्रधानता तथा अनामिका अंगुली में दबाब कफ दोश की प्रधानता को दर्षाता है। इस परीक्षण के आधार पर रोगी के रोग का उचित रीति से निरीक्षण करने के पश्चात् ही उचित चिकित्सा या औषध का प्रयोग किया जा सकता है।

रोगी के मूत्र के रंगों के आधार पर उसमें रोग की प्रकृति का निर्धारण किया जा सकता है।

· वात रोग से ग्रसित व्यक्ति– जिस प्रकार यदि रोगी वात दोश से ग्रसित है, तो उसका मूत्र हल्के पीले रंग का होता हैं।

· कफ रोग से ग्रसित व्यक्ति– यदि रोगी का मूत्र सफेद और झाग वाला होता है, तो वह कफ विकार से ग्रसित है।

· पित्त रोग से ग्रसित व्यक्ति– यदि रोगी पित्त दोश से युक्त है, तो उसका मूत्र पीले या लाल रंग हल्का सफेद और अधिक बुलबुले होने से रोगी में वात और कफ की प्रधानता को दर्शाता है।

पुराने बुखार में रोगी का मूत्र रक्त के समान लाल और पीले रंग का होता है। इसी आधार पर रोगियों में रोग की प्रकृति का ज्ञान किया जाता है।

रोगी के नेत्रों के रगों के आधार पर उसमें रोग की प्रकृति का निर्धारण

चिकित्सक को रोगी के नेत्र का रंग और उसकी अन्य स्थितियाँ रोग के विषय का ज्ञान करा देती है और वह उसी के अनुसार रोग के शमन के लिए औषध का प्रयोग करता है।

· वात रोग से ग्रसित व्यक्ति – व्यक्ति वात रोग से ग्रसित हो सकता है, जब उसकी आँखे धूर्म वर्ण वाली, सूखी और डरावनी सी प्रतीत होती है और उसकी आँखों में जलन होती है।

· पित्त रोग से ग्रसित व्यक्ति– यदि व्यक्ति पित्त दोश की अधिकता से पीड़ित है, तो उसकी आँखे हल्दी के समान पीली या लाल हेाती है। उसे रोशनी से परेशानी होती है आरै आँखों में जलन होती है।

· कफ रोग से ग्रसित व्यक्ति– आँखों का रंग सफेद होना, आँखों में अधिक स्राव होना और उसकी सपुतली की चंचलता से ग्रसित होते हैं, तो वह कफ से पीड़ित होता है।

· दुसाध्य रोग से ग्रसित व्यक्ति– यदि रोगी की आँख लाल या काली रंग की प्रतीत होती है, रोगी की स्थिति चिंताजनक है, वह दुसाध्य रोग से ग्रसित है, क्योंकि उसकी आँखे भी डरावनी प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार आँखों की परीक्षा से रोग की स्थिति का अवलोकन किया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त रोगों के परीक्षणों के आधार पर आयुर्वेद में उनका निदान या चिकित्सा की जाती है। उनकी गभींरता की स्थिति में उपर्युक्त औषधियों का सेवन भी कराया जाता है। जिससे रोगी में रोग का विनाश हो सकें, क्योंकि आयुर्वेद का उद्देश्य ही यही है कि रोगियों के रोग को दूर करके उनको स्वास्थ्य और आयु का लाभ दे सकें। जीवन के उत्कर्ष के लिए तथा अपने कल्याण के लिए रोग एवं रोग ज्ञान के उपाय के बारे में जानना अति आवष्यक है जिसका अनुशीलन कर व्यक्ति अनेकानेक आपदाओं, रोगों अभिचारों से सुरक्षित रहकर पर्णू आराग्ेय तथा धर्म, अर्थ, काम आरै मोक्ष सभी को प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है। जो व्यक्ति सदैव हितकर आहार–विहार का सेवन करता है, सोच–समझकर कार्य करता है, विषयों में आसक्त नहीं होता, जो दानशील, समत्व बुद्धि से युक्त, सत्यपरायण, क्षमावान, वृद्धजनों की सेवा करने वाला है वह निरोग रहता है।

संदर्भः

चरक संहिता प्रथम भाग, सम्पादक, एच॰सी॰ कुशवाहा, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 2009।

अंग्रेजी एवं संस्कृत शब्दकोश, एम॰ विलियन्स, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, प्रा॰ लि॰ 1991।

वाग्भट् अश्टांग संग्रह, के॰ आर॰ श्रीकण्ठ मूर्ति, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी,2005।

आयुर्वेद दर्शन, वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शान्तिकुंज, 2005।

स्वास्थ रक्षक, पी॰ डी॰ पाण्डेय, निरोग धाम प्रकाशन, 2004।

आहारचिकित्सा, डॉ॰ अनीता सिंह स्टार पब्लिकेशन, आगरा।

आयुर्वेद सारसग्रंह, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि॰।

ऋतुचर्या, केन्द्रीय आयुर्वेदीय विज्ञान अनुसंधान परिषद् आयुष मंत्रालय।

आहार एवं पोषण, मंगला कान्यो मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।

Ashtanga Hridayam, Revised by Dr. Brahmanand Tripathi, Chaukhamba Sanskrit Pratishthan, Delhi.

Yogaratnakara, Revised by Dr. Indradev Tripathi and Dr. Daya Shanker Tripathi, Krishna Das Academy, Varanasi.

Agnivesha, Charaka Samhita, Revised by Charaka and Drdhabala, Choukhamba Sanskrit Sansthan Varanasi, Reprint-2007.

Agnivesha, Charaka Samhita, Revised by Charaka and Drdhabala, Choukhamba Sanskrit Sansthan Varanasi.

Agnivesha, Charaka Samhita, Revised by Charaka and Drdhabala, Choukhamba Sanskrit Sansthan Varanasi.